श्रीहरिः ।

गीतातात्पर्य.

अनुवादकर्ता,

दे० पं० श्रीरमानाथ शास्त्री.

प्रकाशकः—

पं० भट्टश्रीगौरगोपालशर्मा.

सन १९३४.

नो० एक आना.

पता—"श्रीबालकृष्णपुस्तकालय, बडामन्दिर,
भूलेश्वर, बंबई."

श्रीमद्भगवद्गीताशास्त्रका मुख्य उद्देश क्या है ?

अखिल जगत्पति चराचर सकललोकके कर्ता श्रीकृष्ण परमात्माने निजरमणके लिये निर्माण किये हुए इस विशाल क्रीडाभवन भुवनमें अनादिकालसे उसकी इच्छासेही दैवी और आसुरी संपत्ति आजतक चली आती है । श्रीहरिके सन्मुख होना और विमुख होना यह दोनों संपत्तियोंका संक्षिप्तलक्षण है । आसुरसंपत्तिवालोंको श्रीहरिका उत्कर्षका सहन नहीं होता यह बात इतिहाससे स्पष्ट होती है । कितनेक चार्वाकादि तो ईश्वरको माननेमें भी अपना अपकर्ष मानते थे । वे देहकोही आत्मा या ईश्वर मानते थे । और दृष्टको ही युक्त मानते थे । दृष्टके सिवाय और सबको मिथ्या मानते थे उनकेबाद बौद्धमतका प्रादुर्भाव हुवा । बौद्धलोक अनुमानकोभी प्रमाण मानने लगे । परन्तु वेदको वे लोग अप्रमाण और झूंठा मानते थे । उनके मतमें क्षणिकविज्ञानके सिवाय ईश्वर, शास्त्र, उपदेश, उपदेष्टा, आदि प्रपञ्च कल्पित मिथ्या गिना जाता था । उनके अनन्तर श्रीमान् शंकराचार्य हुए । उनने भी भगवदाज्ञासे वेदकी आड़लेकर उसीमतको रूपान्तरसे दृढमूल किया । यह बात उनके और बौद्धोंके ग्रन्थोंका साम्य करनेसे मालुम पड़ती है । उन्होंने विज्ञानका 'वि' उड़ाकर और उसे नित्य सिद्धकर अपना अलग मत प्रसिद्ध किया । उनके मतमें कल्पितोपाधियुक्त ज्ञानही ईश्वर जीव कहा जाता है । तथा ज्ञानके सिवाय अन्य प्रपञ्च मिथ्या है, कल्पित है । श्रीकृष्ण, राम, नृसिंह, आदि अवतारोंको वे लोग वैसा ब्रह्म मानते नहीं अथवा

सत्य मानते नहीं किन्तु मायिक मानते हैं। वेदभी उनके मतमें व्यवहारावस्थामेंही प्रमाण है, वास्तवमें तो वहभी अप्रमाण, कल्पित, मिथ्या है। इसलिये कहना पड़ा है कि वहभी बौद्धोंकाही रूपान्तर है। शास्त्रमें कहींभी श्रीकृष्ण, अवतार, शास्त्र, प्रभृतिको असत्य नहीं कहा। किन्तु शांकर वेदान्तका गूढ निरीक्षण करनेसे एक चित्के सिवा और यह सब भ्रममात्र हैं ऐसा स्पष्ट मालुम पड़ता है। उनके बाद कितनेही भगवद्भक्त वैष्णवाचार्य हुए। उन्होंने ईश्वर, वेदशास्त्र, उपासना, कर्म, प्रतिमा, आदि जगत्का सत्यत्व वेदका यथार्थ आशय बताकर सिद्ध किया। उनके मतमें श्रीहरिकी भक्ति करनी यह जीवका प्रधान कर्तव्य है। यद्यपि उन्होंने वेदादिशास्त्रोंसे जगत्का सत्यत्व, श्रीहरिभक्तिका माहात्म्य इत्यादिका स्थापन किया तथापि उनके कार्यमेंभी शुद्ध अद्वैत और निर्गुणा भक्ति ये दो कमी रहगईं। उनके पश्चात् वैश्वानरावतार भगवान् श्रीमद्वल्लभाचार्यका प्राकट्य हुआ। उन्होंने शुद्धाद्वैतपुष्टि-मार्ग सम्प्रदायका स्थापन कर श्रीकृष्णमें निर्हेतुक सुदृढ भक्ति करनी यह जीवका स्वधर्म है, और वेदादिशास्त्रोंका तात्पर्यार्थभी यही है यह बात सिद्ध कर दिखाई। विशेषकर श्रीकृष्ण भगवान्का स्वरूप क्या है इस बातको वेदादिशास्त्रोंसे स्पष्ट कर दिखाना यह मान श्रीमद्वल्लभाचार्यजीको ही घटित है। श्रीमद्वल्लभाचार्यके सम्प्रदायमें श्रीकृष्णको सर्वोत्कृष्ट और परमकाष्ठापन्न वस्तु माने हैं। और उनके वचनामृतरूप गीताशास्त्रको उत्तमोत्तम शास्त्र मानाहै। यह बात शांकरमतावलम्बी लोग नहीं मानते ऐसा मालुम पड़ता है वह लोग श्रीकृष्णको मायिक और उनके वचनामृतोंको

बाधितानुवृत्तिरूप अज्ञानकल्पका कार्य मानते हैं ऐसा उनके ग्रंथोंके देखनेसे मालुम पड़ता है। यद्यपि हमें परमतके विवेचनसे इतना अर्थ नहीं है तथापि जो अपनेको विद्वान् समझकर दूसरे मतोंपर नीच आक्षेप करते हैं, उनकी आखें खुलनेके लिये यह थोड़ासा लिखना पड़ा है। और आगे काम पड़नेपर विशेष लिखेंगे। अस्तु जितना लिखा है उतना, हमारे मतावलम्बी मुग्ध भ्रातृगण किसीके चक्करमें न पड़जांय, अथवा उल्टा न समझ बैठें, यह थोड़ाही बहुत है।

श्रीमद्वल्लभाचार्य अथवा उनके पुत्रकी निर्मित कोई गीताकी टीका नहीं मिलती। हां श्रीविठ्ठलेशप्रभुकृत गीताकी टीकाका एक अध्यायमात्र मिलता है। परन्तु तौ भी उनके अन्यग्रन्थोंसे गीताका तात्पर्य कहां है यह मालुम होसक्ता है। गीताका क्या तात्पर्य है इस विषयपर श्रीविठ्ठलनाथदीक्षितजीका यह **'गीतातात्पर्य'** नामक ग्रन्थ हम अपने वैष्णवसमाजके लिये प्रकाशित करते हैं। इसके अनुसार समग्रगीताके अर्थको लगाना चाहिये। गीताके तात्पर्यपर श्रीशंकराचार्यका क्या मत है सो हम नीचे लिखते हैं

स एव च स्वप्रयोजनाभावेऽपि भूतानुजिघृक्षया वैदिकं हि धर्मद्वयमर्जुनाय शोकमोहमहोदधौ निमग्नायोपदिदेश। तस्याऽस्य गीताशास्त्रस्य संक्षेपतः प्रयोजनं परं निश्रेयसम्। तच्च सहेतुकस्य संसारस्यात्यन्तोपरमलक्षणम्।

अर्थात्—माया (अज्ञानका भेद) से देहयुक्त दीखते उस अंशरूप भगवान् वासुदेवनेही अपना स्वार्थ न रहतेभी भूतोंपर

अनुग्रह करनेकी इच्छासे शोकमोहसमुद्रमें गोता लगाते हुए अर्जुनको प्रवृत्ति निवृत्तिरूप धर्मका उपदेश किया। उस धर्मका उपदेश जिसमें है ऐसे इस गीताशास्त्रका मुख्यप्रयोजन, अविद्या अथवा मायासहित संसारका उपरम मात्र है। अर्थात्—स्वयं ब्रह्मरूप-जीवको अविद्याके कारण मैं अल्पज्ञ हूं, जीव हूं, देहवाला हूं, ब्रह्म मुझसे जुदा है, मैं ब्रह्म नहीं हूं श्रीकृष्ण उपदेष्टा हैं, मैं उपदेश्य हूं, इत्यादि अज्ञानवाच्य जो संसार लगा है वह जब दूर हो और मैंही ब्रह्म हूं, मुझसे जुदा ब्रह्म नहीं इत्यादि जब स्वरूपज्ञान हो तौ उसे निःश्रेयस किंवा मुक्ति कहते हैं। और यही गीताशास्त्रका प्रयोजन है। यद्यपि गीताशास्त्रका प्रयोजन अहंताममतारूप संसारका उपरम है तथापि इसतरह और केवल यही प्रयोजन नहीं। न जाने श्रीशंकराचार्यने यह घरका पलोथन कहांसे लगाया है। श्रीमधुसूदनसरस्वतीभी गीताका प्रारम्भमें प्रयोजन शोकमोह और भेदका दूर करना बताते हैं। परन्तु भगवद्गीतामें तो यह प्रयोजन कहीं मिलता नहीं। यद्यपि गीतामें सांख्य योग कर्म आदि अनेक विषय आते हैं किन्तु वह सब अङ्गरूपसे हैं। प्रधान प्रयोजन तो भगवच्छरणागतिका है। भगवान्के अधीन होकर कर्म करना यह स्पष्ट अक्षरोंसे और फलसे प्रतीत होता है। और इसका तात्पर्य है शरणागति। और उसीकी अधिकारसंपत्तिके लिये सांख्य योगादिकी चर्चा है। उपक्रम और उपसंहारसे **'शरणागति ही गीताका तात्पर्य है'** यह स्पष्ट होता है। श्रीशंकराचार्यने **'सर्वधर्मान्परित्यज्य'** गीताके इस अन्तिम श्लोकका भाष्य करनेसे तो अपने मतके पक्षपातकी अवधि करदी है। यद्यपि सुनकर लोगोंको हँसी छूटेगी तौभी हम यथावस्थित नीचे लिखे देते हैं।

'सर्वधर्मान्परित्यज्य,' 'संन्यस्य सर्वकर्माणीत्येतत्'—इत्यादि **'गर्भजन्मजरामरणविवर्जितमहमेवेत्येवमेकं शरणं व्रज न मत्तोऽन्यदस्तीत्यवधारयेत्यर्थः'** इत्यन्त।

श्लोकका यह अर्थ जहांतक अक्षर अक्षरमें लक्षणा न करैं वहां तक निकलताही नहीं अथवा असंभवही है।

मधुसूदनसरस्वतीने अंतमें जाकर शरणागतिमेंही गीताका तात्पर्य कहा है और संन्यासका स्पष्ट खंडन किया है। और **'भाष्यकृतस्तु'** यों कहकर दिल्लगी उड़ाई है।

अस्तु. हमारी समझमें तो श्रीविठ्ठलेशप्रभुकृत **गीतातात्पर्य** ही गीताका तात्पर्य है। इति **हरिः शरणम्**।

अनुवादकर्ता.

श्रीहरिः शरणम् ।

श्रीविट्ठलेशप्रभुविरचितम् ।

श्रीगीतातात्पर्यम् ।

श्रीमत्प्रभुचरण, शिष्टाचारपरिपालनके लिये ग्रन्थके पूर्वमें गुरु-प्रणामरूप मङ्गल करते हैं ।

पितृपादाब्जयुगलं प्रणमामि कृपामधु ।
यत्कुलं गोकुलेशेन स्वीकृतं कृपया स्वतः ॥ १ ॥

अर्थ—श्रीगोकुलपतिभगवान्ने जिनके कुलको अपनी इच्छासे अनुग्रहकर स्वीकार किया है, उन श्रीमद्वल्लभाचार्यके चरणनलिनमें मैं प्रणाम करता हूं ॥ १ ॥

प्रतिज्ञा.

अतस्तद्वदनांभोजच्युतगीतामृताम्बुधिम् ।
आविर्भावे हेतुमीशानुग्रहाद्विमृशाम्यहम् ॥ २ ॥

अर्थ—इसलिये भगवदाविर्भाव होनेमें कारण जो भगवान्के मुखारविन्दसे प्रकट हुआ गीतारूप अमृतसमुद्र, में उन्हीकी कृपासे उसमें अवगाहन करता हूं, अर्थात् भगवद्गीताके तात्पर्यका संक्षेपसे निरूपण करता हूं ॥ २ ॥

पूर्वपक्षः

स्वयं स्वतत्त्वं हि हरिः पार्थायोपदिशत्यदः ।
तदादौ धृतराष्ट्रस्याऽभक्तस्य वचसा न हि ॥ ३ ॥

उपक्रमो युक्ततरस्तत्पुत्रस्याऽपि वा कथा ।
पार्थस्यापि विषादोऽयमतद्रूपत्वतस्तथा ॥ ४ ॥
उपदेशे हेतुतया स उक्त इति चेन्न हि ।
विक्षेपात्मत्वतः शान्त्याद्यरूपत्वादपि स्फुटम् ॥ ५ ॥
अत्राधिकाराभावस्य ज्ञापकत्वाच्च लौकिकी ।
कथा युक्ता तथाभूता, न तु विद्योपदेशनम् ॥ ६ ॥

अपरं च.

ब्रह्मविद्या श्रवणतः सर्वत्यागो विरागतः ।
युक्तः स्यान्न तु गुर्वादिहननं राज्यभोगिता ॥ ७ ॥
एवं पूर्वोत्तरकथाविरुद्धमिव भाति हि ।
उपदेशनमीशे तु न तथा संभवत्यपि ॥ ८ ॥
अतः संदंशपतिता विचारकमतिर्बत ।

पूर्वपक्षः

अर्थ—श्रीमत्प्रभुचरण (श्री गुसांईजी) श्रीविठ्ठलनाथदीक्षित, भगवद्गीताके तात्पर्यका निरूपण करनेके लिये पहले पूर्वपक्षमें कहते हैं कि जब भगवान् स्वयं अपने तत्त्वका गीतारूपसे अर्जुनको उपदेश करते हैं तो ऐसे उपदेशकी आदिमें अभक्त और भक्तद्वेषी धृतराष्ट्रकी वाणीसे उपक्रम करना युक्त नहीं मालुम पड़ता । और इसीतरह वैसेही दुष्ट उसके पुत्र दुर्योधनादिकी कथा भी प्रारम्भमें ठीक नहीं लगती । और अर्जुन क्षत्रिय है तो उसका इसतरह समयपर घबराना और भयभीत होना प्रारम्भमें न कहना चाहिये । कदाचित्, उपदेशमें अर्जुनका विषादही हेतु है यह समझ-

कर समाधान करो तौभी ठीक नहीं, क्योंकि उपदेशके पूर्वही विषाद होनेसे उपदेशश्रवणकरनेमें अर्जुनको विक्षेप होना संभव है । क्योंकि उपदेशश्रवणके समय शान्तिकी अपेक्षा है, और विषाद शान्तिका भङ्गकरनेवाला है । और इससे यहभी विदित है कि जिसको श्रवणके समय विषाद और अशान्ति है उस अर्जुनको उपदेश सुननेका अधिकारही नहीं रहता । इसलिये उस विषादके दूरकरनेके लिये भगवान्को भी कोई अनुरूप लौकिक आख्यायिका कहनी थी, न कि शान्त दान्त अधिकारीके योग्य आत्मतत्त्वका निरूपण । जिस तरह उपक्रम पर तरहतरहके तर्क होते हैं इसीतरह उपसंहारमें भी शंका उत्पन्न होती है । उपदेशदेनेके बाद अर्जुनकोभी विद्याका श्रवण करनेसे वैराग्य उत्पन्न होना चाहिये था । और उस वैराग्यसे राज्यादि सर्व अनात्मवस्तुओंका परित्याग करना योग्य था । किन्तु अपने गुरु तथा पूज्यवर्गका हनन तो सर्वथा अयुक्त था । इसतरह गीताका उपक्रम तथा उपसंहार दोनों अनेक तर्कोंसे पराहतसे मालुम पड़ते हैं । और असल तो यही विरुद्धसा जचता है कि सर्वरक्षक धर्मसंस्थापक स्वयं भगवान्ने अर्जुनको पूज्यहननका उपदेश (आज्ञा) कैसे किया । इसतरह पूर्वापरका विचार करनेसे विचारककी बुद्धि तप्तसंदंश (सडाँसी) के बीचमें पड़जाती हैं ।

उत्तरपक्षः

एवं सति वदामस्त्वां तात्पर्यं कृपया हरेः ॥ ९ ॥
भक्तिमार्गरीतिर्हि अलौकिकी, न साधारणरीत्या निर्णयः कर्तुं शक्यः । पार्था हि भक्ति-

मार्गेऽङ्गीकृताः स्वीयत्वेन । पार्थास्तु 'देवो भगवान्मुकुंदो गृहीतवा'नित्यतएव विदुरवाक्यम् । एवं सति 'भ्राताऽपि भ्रातरं हन्या'दिति न्यायेन लोकवद्रिपून्मारयित्वा राज्यं कुर्युस्तदा राज्ये भगवत्संबंधाभावात्तद्भोगे भगवदीयत्वं न भवेत् । एवं सति पार्थस्य स्वतस्ततो निवृत्त्युक्त्या लौकिकरीत्यभाव उक्तो भवति । 'क्षत्रियाणामयं धर्म' इतिवचनात् शूराणां तेषां युद्धोपस्थितौ वीररस एवोत्पद्यते वस्तुस्वभावात्, न तु वैराग्यं पार्थे च तदुत्पत्तौ भगवदीयत्वमेव हेतुः । अन्यथा तु तुल्ययोगक्षेमत्वाद्धार्तराष्ट्रेष्वपि तदुत्पत्तिः स्यात् । एतज्ज्ञापनायैवाऽऽदौ धृतराष्ट्रतत्पुत्रकथोक्ता, तया तदुत्साह उक्तो भवति । भगवदीयस्य तु भगवत्कार्योन्मुख्येव मतिरुचिता तद्विरुद्धा कुमतिरेव । अन्यथा धर्मशास्त्रादिषु गुर्वादिहननस्य निषिद्धत्वात्ततो निवर्तिका मतिर्मतित्वेन नोच्येत । तदुक्तं भीष्मेण 'व्यवहितपृतनामुखं निरीक्ष्य स्वजनवधाद्विमुखस्य दोषबुद्ध्या । कुमतिमहरदात्मविद्यया य' इति । एतेन भक्तिमार्गीयमर्यादा लोकवेदातीता । अतस्तावादाय भक्तिमार्गो न विचारयितुं युक्तस्तदतीतत्वादिति ज्ञापितं भवति । अतएव ब्रह्म-

विद्योपदेशानुपदमेवाऽऽसुरहनने प्रवृत्तिरभूत् । एतेन 'एतच्छ्रवणानन्तरं सर्वत्याग उचितो न तु गुर्वादिहनन'मिति निरस्तं वेदितव्यम् ।

अर्थ—इसतरह जब विचारकवर्गको अनेक सन्देह होते हैं तो भगवदनुग्रहसे जो कुछ तत्त्व मिला है वह इसके उत्तरमें हमें कहना पडता है कि भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनादि पांचों पाण्डवोंको 'अपने हैं' यह समझकर भक्तिमार्गमें अंगीकार किया है । इसीसे श्रीमद्भागवतमें विदुरजीका कथन है कि 'क्रीडारसिक श्रीमुकुन्दभगवान्ने पाण्डवोंका स्वीयभावसे ग्रहण किया है' । भक्तिमार्गमें ग्रहण किया है । इसीलिये 'क्षत्रियोंमें युद्धके समय भाईको भी भाई मारै' इस न्यायसे जो अर्जुनादिक भगवद्भक्तभी इतरजनकीतरह अपने दुश्मनोंको मारकर राज्यका उपभोग करें तो ऐसे राज्यादिमें भगवत्संबंध न होनेसे उनके उस भगवदीयत्वका निर्वाह नहीं होता । यह रहनेपरभी जब अर्जुनका इसतरह वैराग्यका वर्णन किया है तौ यह सूचित होता है कि अर्जुनके वैराग्य होनेमें कोई लौकिकभाव कारण नहीं किन्तु अलौकिकही है । अर्थात्—अर्जुनको जो बन्धुहननमें दया उपजी वह केवल भगवदीयत्व होनेसे भगवदिच्छासेही हुई किन्तु उसके होनेमें और कोई लौकिकभाव हेतु नहीं । 'क्षत्रियोंका यह धर्म है कि युद्धमें भाईको भाईभी मारै' इत्यादि वचनोंसे यह स्पष्ट है कि अर्जुन जैसे वीराग्रणीको युद्धसमयमें वीररसकाही प्रादुर्भाव होना युक्त था । ऐसे समय युद्धसे विराग होना अननुरूप था । कारण कि जिसका जो स्वभाव है वह उससे किसी अवस्थामें भी

जुदा नहीं होसक्ता। वीरस्वभाव क्षत्रिय अर्जुनको युद्धमें वैराग्य होनाही स्पष्ट कहे देताहै कि उसे जो वैराग्य हुआ है वह मात्र भगवदीय होनेसेही, और भगवदिच्छासेही। जो किसी लौकिकभावसे वैराग्य होता तौ जिस तरह अर्जुनके दुर्योधनादिक बान्धव हैं इसीतरह उनके अर्जुनादिकभी बन्धु है फिर समान होनेसे उनके हृदयमें भी वैराग्य होना चाहिये था। परन्तु वैसा न होनेसे यह सिद्ध होता है कि अर्जुनके भगवदीय होनेसेही उसे वैराग्य हुआ, किन्तु उसके विरुद्ध होनेसे दुर्योधनादिको वह न हुआ। अर्जुनका वह उत्तम अधिकार स्पष्ट करनेके लिये ही प्रारंभमें धृतराष्ट्र और उसके पुत्रोंकी कथा उद्धृत है। भक्तिमार्गकी रीति लोकसे जुदी है यह बात यहांतकके ग्रन्थसे स्पष्टहुई अब वह वेदसे भी अतीत है यह बात बतानेके लिये **'अर्जुनकी प्रवृत्ति गुर्वादिहननमें कैसे हुई'** इसका उत्तर देते हैं **'परित्राणाय'** इत्यादिवचनोंसे यह विदित होता है कि भगवान्का प्रादुर्भाव असुरसंहारके लिये है। असुरसंहार करना यह भगवान्का कार्य है। उस भगवत्कार्यके अनुसार कार्य करना, किंवा तदनुकुलमति होना यह भगवदीयका धर्म है भगवत्कार्यसे विरुद्धबुद्धिका होना भगवदीयताके लायक नहीं। यदि भगवदीयकी ऐसे विरुद्धबुद्धिहो तो वह बुद्धि कुमति कही जायगी। दुर्योधनादिक असुरावेशी होनेसे असुर हैं अतः उन्हे मारना यह प्रभुको अभीष्ट है। प्रभुके अभीष्टसे विरुद्ध वैराग्यबुद्धि हुई यह अर्जुनकी कुमति थी। अर्जुनमें जो उससमय अपनेसे विरुद्धता उत्पन्न हुई उसीको दूरकरनेके लिये श्रीहरिने अठारह अध्यायद्वारा अपने तत्त्वका उपदेश किया। और उसकी उस कुमतिका नाश किया। तथा सुमतिका

दानकिया। भगवदिच्छाके जो अनुकूल वह बुद्धि सुमति, और जो उसके प्रतिकूल वह बुद्धि कुमति है। यदि यह नहो तौ श्रीमद्भागवतादिमें गुर्वादिहनन न करनेकी इच्छाको कुमति न कहते। मर्यादामार्गमें वेदशास्त्रोक्तविधिके अनुसार चलना यह धर्म है। और भक्तिमार्गमें प्रभुकी इच्छाके अनुकूल चलना धर्म है। यद्यपि गुरु आदिका हनन धर्मशास्त्रादिमें निषिद्ध है, और अधर्मभी है। तथापि उससमय भगवान्की इच्छा उन्हे मारनेकी ही थी इसलिये अर्जुनको जो असुरहननमें वैराग्य हुआ वह भगवदिच्छासे विरुद्ध था तो वह कुमति ही है। उस कुमतिका गीताद्वारा भगवान्ने नाश किया यह बात श्रीमद्भागवतमें हरिभक्त भीष्मपितामहने कही है कि **'विरुद्धपक्षकी सेनाको लड़ाईकरनेकेलिये तैयार देखकर और उस युद्धको दुष्टकर्म जानकर निजबांधवोंके मारनेसे विमुखहुए अर्जुनकी उस कुमतिको जिसने हरण की वह भगवान् ही मेरी गति हो,।** इससे यह भी स्पष्ट होता है कि भक्तिमार्गकी मर्यादा वेदसेभी अतीत है। इसीसे लोक और वेदके अनुसार ही भक्तिमार्गका भी विचार करना युक्त नहीं। कारण कि भगवद्भक्त वेदलोकातीत हैं। और इसीलिये ब्रह्मविद्योपदेशके अनन्तर ही अर्जुनकी असुरहननमें प्रवृत्ति हुई। इससे जो लोग यह तर्क करते हैं कि 'ब्रह्मविद्याश्रवणानंतर अर्जुनको सर्वत्याग करना युक्त था किन्तु गुरु आदिका हनन अयुक्त था' यह भी अनभिज्ञता मात्र है।

वस्तुतस्तु सर्वत्यागोऽप्ययमेव, लोकवेदत्यागपूर्वकं भगवत एव ग्रहणं यतः। अतएव 'कच्चिदेतच्छ्रुतं पार्थ त्वयैकाग्रेण चेतसा' इत्या-

दिना भगवता पृष्टः पार्थो 'नष्टो मोह' इत्युपक्रम्य 'करिष्ये वचनं तवे'त्युत्तरितवान् । तेन केवलभगवदीयत्वं फलितं भवति । राज्यादेरत्यागस्तु स्वमुक्तिप्रतिबंधकत्वज्ञानेनेति तत्र प्रभुसंबंधोऽस्तीति न तुच्छतरः । ननु भगवदिच्छाऽननुरूपा मतिर्भक्ते कथमभूदितिचेदित्थम् । वस्तुतो भगवदीयत्वेऽपि तदधीनोऽहं युद्धादिकं करिष्ये इति न ज्ञानमासीत् । भगवता तदज्ञापनात् । किन्तु क्षात्रधर्मत्वेन । तथा तत्कृतिर्भक्तस्य नोचिता । तदीयत्वविरुद्धत्वात् । अतस्तस्यैवांतःस्थितस्याऽनुभावेन तत्प्राकट्ये हेतुरभूत् । अन्नदानाय क्षुदुत्पादनवत् भगवदिच्छया तथामतिः । एतेन प्रभुतत्वं तज्ज्ञापितमेव भक्तस्यापि ज्ञापितं भवति न तु स्वतो ज्ञापितं भवतीति दिक् । अपरंच, पुष्टिमार्गाङ्गीकारे स्वतएव तत्स्फूर्तिः स्यादेव । पार्थास्तु पुष्टिमर्यादायामङ्गीकृता इति पूर्वं तदुत्पत्तिरुपदेशेन च तन्निवृत्तिः ।

इति श्रीपितृपादाब्जदासेन निजहृद्गता ।
भक्तिमार्गस्य मर्यादा निरुक्ता विट्ठलेन वै ॥

इति श्रीविट्ठलदीक्षितकृतं गीतातात्पर्यं समाप्तम् ।

अर्थ—वास्तवमें तो लोकवेदत्यागपूर्वक श्रीकृष्णमात्रका ग्रहण करनेका नाम ही सर्वत्याग है । इसीसे 'हे अर्जुन मेरे कथनका

तुमने एकाग्रचित्तसे श्रवण किया' ? इस श्रीकृष्णप्रश्नके उत्तरमें अर्जुनने 'मेरा मोह नष्ट हुआ' यहांसे प्रारम्भ कर 'हे श्रीकृष्ण ! अब मैं आपकी आज्ञाके अनुसार करूंगा' इसतरह उत्तर दिया । इससे अर्जुन केवलभगवदीय है यह स्पष्ट होता है । यहां 'भगवदीय अर्जुनकी आसक्ति राज्यमें कैसे हुई, और उसने राज्यकाभी परित्याग क्यों न किया ?' यह भी प्रश्न न करना चाहिये । कारण कि जो कदाचित् राज्यमें प्रभुका संबंध न होता, तौ वैसा राज्य मोक्षमें प्रतिबंधक होनेसे परित्याग करनेलायक था । किन्तु अर्जुनके राज्यमें प्रभुका संबंध पूर्णरीत्या है, इसलिये अर्जुनने उसका त्याग न किया । यहां एक यहभी प्रश्न होता है कि भगवदीय अर्जुनकी 'मैं युद्ध नहीं करूंगा' ऐसी भगवदिच्छासे विरुद्धबुद्धि क्यों हुई ? । इसका उत्तर यों समझनेका है कि 'भगवान् सबके प्रेरक हैं । भगवान्ही सबको ज्ञान देनेवाले हैं । इसलिये जहांतक प्रभु वैसी इच्छा न करैं तहांतक जीवको किसी विषयका ज्ञान नहीं होसक्ता । इससे यद्यपि अर्जुन भगवदीय था, तथापि भगवदिच्छा वैसी न होनेसे उसे 'मैं प्रभुके अधीन रहकर युद्धादिकार्य करूं' यह ज्ञान न था, किन्तु 'मैं क्षत्रिय हूं इसलिये युद्ध करूंगा' इसतरह ज्ञान था । धर्मीके अधीन रहकर नहीं किन्तु धर्ममात्रके अधीन रहकर कार्यकरना भगवद्भक्तको उचित नहीं । कारण ऐसा आचरण भक्तिके विरुद्ध है । इसलिये सर्वके हृदयमें सर्वदा निवास करनेवाले श्रीहरिके प्रभावसेही, भगवदिच्छासेही वैसी मति हुई । कारणकी विरुद्धमति उत्पन्न करवाकर ही तदुपशमार्थ ब्रह्मविद्याका दान करना था । जिसतरह भगवान् अन्नादि देनेके लिये क्षुधाकी उत्पत्ति करते हैं,

इसीतरह निजतत्त्वका उपदेश करनेके लिये अर्जुनको वैसी बुद्धि दी। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि भगवद्भक्तको भी भगवान् इच्छा करैं तोही प्रभुतत्त्वका ज्ञान होता है, अपने आप, किंवा साधनान्तरसे नहीं होता। एक और भी कारण है कि यदि अर्जुनका अङ्गीकार शुद्धपुष्टिमार्गमें हुआ होता, तौ उसकी स्फूर्ति स्वतःभी होसक्ति थी, परन्तु कुन्तीपुत्रोंका तो भगवान्ने पुष्टिमर्यादामें अंगीकार किया है। इसीलिये पहलें अर्जुनके हृदयमें ऐसी बुद्धिका प्रादुर्भाव हुआ, और फिर भगवदुपदेशसे उसकी उपशान्ति हुई।

इसतरह श्रीमद्वल्लभआचार्यचरणोंके दास श्रीविठ्ठलनाथजीने निजहृदयस्थित भक्तिमार्गकी मर्यादा प्रकट की।

प्राचीनाचार्यकृपया रमानाथेन सूरिणा।
अनूदितमिदं वर्षे चन्द्रर्षिनिधिभूमिते॥

Published by Pandit Bhatta Shri Gaur Gopal Sharma,
Bada Mandir, Bhuleshwar, Bombay.

Printed by Ramchandra Yesu Shedge, "Nirnaya-sagar"
Press, 26–28, Kolbhat Lane, Bombay.

[All Rights Reserved by the Publisher.]

श्रीबालकृष्ण शुद्धाद्वैत संस्कृत पुस्तकालयकी मुद्रापित
साम्प्रदायिक पुस्तकों.

संस्कृत.	मूल्य.
बालकृष्णचम्पू ...	२
अणुभाष्य पञ्चटीकासहित ...	३
टीका श्रीमद्भागवत	
वादावलि	२
वेदान्तचिन्तामणि ...	१
भक्तिहंस	१
पुष्टिप्रवाहमर्यादाभेद ...	।=)
सिद्धान्तसिद्धापगा ...	।=)
निर्णयार्णव	।=)
यमुनाष्टक श्रीपुरुषोत्तमजी कृत	।)
यमुनाष्टक श्रीहरिरायजी कृत	।)
बालबोध	।)
,, देवकीनन्दनजी कृत	।)
सिद्धान्तमुक्तावलि ...	।)
सेवाकौमुदी ...	⊘=)
माण्डूक्योपनिषत् ...	।॥)
दर्शनादर्श	⊘=)
स्तुतिपारिजात	⊘=)
व्याख्यानरत्नावलि ...	⊘-)
श्रीनृसिंहोत्तरतापिन्युपनिषत्	।-)
छान्दोग्योपनिषत् ...	।-)
विद्वन्मण्डनोपोद्घातः ...	१

हिन्दी तथा गुजराती.

वल्लभाख्यान [व्रजभाषा]...	४

संस्कृत.	मूल्य.
शुद्धाद्वैतदर्शन [प्रथमभाग हिन्दी]	।॥)
,, [द्वि. भाग हिन्दी]	।॥)
,, [तृ. भाग हिन्दी]	।॥)
,, [प्रथम और द्वितीय भाग गुजराती.]	१
,, [तृतीय भाग गुजराती	।॥)
मराठी प्र. भा.	।॥)
सेवाकौमुदी [हिन्दी] ...	।)
शुद्धाद्वैतसिद्धान्तसार [हिन्दी]	⊘=)
शुद्धाद्वैतसिद्धान्तसार[गुजराती]	⊘=)
न्यासादेश [हिन्दी] ...	⊘=)
,, [गुजराती] ...	⊘=)
गीतातात्पर्य [हिन्दी] ...	⊘-)
गीता–भगवद्धर्मबोधिनी [गुजराती टीका] ...	१
श्रीमद्वल्लभाचार्य और उनके सिद्धान्त	३
सिद्धान्तरहस्यकी विवृत्ति [हिन्दी टीकासहित] ...	।॥)
श्रीमद्वल्लभाचार्य [हिन्दी] ...	⊘-)
श्रीराधाकृष्णतत्त्व [हिन्दी]	⊘-)
ब्रह्मसम्बन्ध [हिन्दी] ...	⊘-)
षोडशग्रंथ [व्रजभाषा] ...	।॥)

अन्य सब प्रेसोंकीभी पुस्तकें हमारे यहां मिलती है. विशेष जाननेके लिये ⊘॥ का टिकट भेजकर सूचीपत्र मंगाओ।

मेनेजर—

श्रीबालकृष्णपुस्तकालय, बडामन्दिर, भुलेश्वर, बम्बई.